THE BOOK WAS DRENCHED

बाल-चरितमाला—संख्या १

श्रीकृष्ण

लेखक

श्री विद्याभास्कर शुक्ल

प्रकाशक

छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

—:*:*::०::*:*:—

१९३५

द्वितीय संस्करण १५००]

[मूल्य चार आना
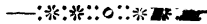
प्रकाशक—
केदार नाथगुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—
छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
रघुनाथप्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

श्री कृष्णचन्द्र
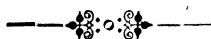
कृष्ण-जन्म

पाँच हजार वर्ष से पहले की बात है, मथुरा में यादव-वंश के राजा उग्रसेन राज करते थे। उग्रसेन के कंस नाम का एक लड़का था। वह बड़ा बदमाश, अत्याचारी और अन्याई था, सब को सताया करता था। वह यहाँ तक बदमाश निकला कि उसने अपने न्यायी और सीधे पिता उग्रसेन को गद्दी से उतारकर कैद में डाल दिया और आप राजा बन बैठा। उसकी जबर्दस्ती के मारे किसी की हिम्मत तक न पड़ती थी कि उसके खिलाफ जबान भी खोले; लेकिन सब दुखी थे और मन ही मन उसका नाश मनाते थे।

उन्हीं दिनों मथुरा के पास गोकुल नामक गाँव में सूरसेन नाम के एक बड़े सीधे-सादे, मिलनसार और

साधारण हैसियत के अहीर (यादव) रहते थे। उनके बहुत-सी गायें थीं। खाने-पीने की कोई कमी न थी। गाँव में सब उनकी इज़्ज़त करते थे। उनके एक लड़का था, नाम उसका वसुदेव था। वसुदेव भी अपने पिता के समान ही सज्जन था।

कंस के चाचा का नाम देवक था। देवक के एक लड़की थी। उसका नाम देवकी था। देवकी जब विवाह के योग्य हुई तो कंस ने देवक को सलाह दी कि वसुदेव के साथ देवकी का विवाह कर दो।

अब क्या था! वसुदेव के साथ देवकी का विवाह होना तै हो गया। बड़े ठाट-बाट से वसुदेव की बरात मथुरा आई। खूब धूमधाम से ब्याह हुआ। देवक के किसी बात की कमी तो थी ही नहीं, उन्होंने सूरसेन को बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, नौकर-चाकर और धन-सम्पत्ति देकर मालामाल कर दिया।

विवाह तो बड़े आनन्द से हो गया; पर जब बारात बिदा हुई और कंस, बहन देवकी को पहुँचाने चला तो रास्ते में आकाशवाणी हुई—"अरे दुष्ट कंस! तू जिसे पहुँचाने जा रहा है उसी का आठवाँ लड़का तेरा नाश करके अत्याचार को दूर करेगा।" इतना सुनते ही कंस डर से काँप गया। तुरन्त ही क्रोध में भरकर दाँत पीसने

लगा, म्यान से तलवार निकाल देवकी का हाथ पकड़कर घसीटते हुये बोला—"ला, मैं तुम्हें और वसुदेव, दोनों को अभी खतम किये देता हूँ, सब झगड़ा ही मिटाये देता हूँ। जब जड़ ही न रहेगी तो पेड़ में फूल पत्ते कहाँ से आवेंगे।"

सब की खुशी मारी गई, वसुदेव-देवकी गिड़गिड़ाने लगे, और सब लोग कंस को समझाने लगे कि बहन-बहनोई को मत मारो। सब ने बहुत प्रार्थना की और वसुदेव ने यह बचन दिया कि देवकी के जितनी सन्तानें होंगी, मैं तुम्हें देता जाऊँगा, तब कंस ने उन लोगों को छोड़ दिया; पर यह सोचकर कि शायद ये लड़के न दें, उन्हें जेल में डलवा दिया और कड़ा पहरा बैठा दिया। दुखी और चिंतित बेचारे वसुदेव-देवकी जेल में दिन काटने लगे। जब उनके सन्तान होती तो वे कंस को दे आते और कंस उसे मार डालता। सातवाँ लड़का बलराम हुआ; पर वह पैदा होने के समय से पहले ही पैदा हुआ, उसे वसुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी के पास पहुँचा दिया गया और कंस से कह दिया गया कि सातवाँ गर्भ गिर गया।

इसके बाद आठवें गर्भ में श्रीकृष्णजी आये। वसुदेव-देवकी पहले ही से घबड़ाने लगे। सोचने लगे आठवें

बालक की रक्षा किस तरह होगी। बरसात के दिन थे, अंधेरी रात थी, बादल घिर रहे थे, रिमझिम-रिमझिम बूँदें गिर रही थीं। तभी भादों वदी अष्टमी के दिन आधी रात को कृष्ण का जन्म हुआ। वसुदेव ने जेल के फाटक पर देखा, सब पहरेदार सो रहे थे, चारों ओर सन्नाटा था।

वसुदेव कृष्ण को एक डलिया में रखकर चुपचाप जेल से निकल और गोकुल को चल दिये। उस समय उनमें न मालूम कहाँ से इतनी हिम्मत आगई कि जंगल के रास्ते में जंगली जानवरों का भी डर उन्हें न लगा। जमुना अथाह बह रही थी। वे उसे भी पार गये।

गोकुल में उनके मित्र नन्दजी रहते थे। उनकी स्त्री यशोदा के भी उसी दिन एक लड़की पैदा हुई थी। यशोदा ने अपनी लड़की वसुदेव को देकर कृष्ण को ले लिया। वसुदेव रातों-रात जेल में लौट आये। पहरेदार जाग पड़े, कंस को सन्तान होने की खबर दी गई। वह ख़ुशी के साथ तलवार हिलाता हुआ जेलखाने आ पहुँचा। वसुदेव ने लड़की की ओर इशारा कर दिया। कंस ने लड़की का पैर पकड़कर जैसे ही उसे जमीन पर पटका कि एक दम उजाला हो गया। आकाशवाणी हुई—"दुष्ट! तेरा मारनेवाला तो पैदा हो गया।" कंस काँप गया, धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। अब होता ही क्या!

गोकुल में नन्दजी ने खूब खुशियाँ मनाईं। ढोल-नगाड़े बजवाये, हजारों गौएँ सोने से सींग गढ़ाकर दान दीं। गरीबों को खूब धन-दौलत, कपड़े-लत्ते बाँटे। दान-दक्षिणा दी, लड़कों को खूब मिठाइयाँ लुटाईं, दूध-दही की नदियाँ बहा दीं। घर-घर बन्दनवार बाँधे गये, सबने आनन्द-बधाये गाये। सभी खुशी में फूले चारों ओर गाते फिरने लगे।

हाथी घोड़ा पालकी।
जै कन्हैयालाल की॥

पूतना-वध

इधर तो कृष्ण तमाम गोकुल की खुशियों के बीच पलने लगे। उधर कंस श्रीकृष्ण के मारने के उपाय सोचने लगा।

पूतना नाम की एक राक्षसी थी। कंस ने उसे बुलाया और कहा—"तू गोकुल की ओर जाकर यदुवंशियों (अहीरों) के लड़के मारना शुरू कर। यदि उन्हीं में कहीं कृष्ण होगा तो वह भी मर जायगा, जा तुझे बहुत-सा इनाम दूँगा।" पूतना बोली—मैंने सुना है, गोकुल में नन्द के यहाँ कृष्ण है सो मैं वहीं जाती हूँ। यह कहकर उसने अपनी छातियों में जहर लगाया और खूब बन-ठनकर गोकुल पहुँची।

यशोदा के घर जाकर उसने उनको खूब बधाई दी, उनकी खूब तारीफ की। फिर बोली—"लाओ, प्यारे कन्हैया का जरा मैं भी मुख चूम लूँ, मिठिया ले लूं, उसे खिला लूं। धन-धन भाग जो तुम्हारे ऐसा सुन्दर पूत पैदा हुआ।"

सीधी-सादी यशोदा भला उस दुष्ट राक्षसी के कपट को क्या जानती थीं! उन्होंने कृष्ण को पलने से लाकर उसकी गोद में दे दिया। पूतना उन्हें थोड़ी देर खेलाती रही, फिर छाती के चिपटाकर दूध पिलाने लगी। बालक कृष्ण को दूध जैसे ही कड़ुवा मालूम पड़ा, उन्होंने उसकी छाती जोर से काट ली।

वह रोने-चिल्लाने लगी। सब औरतें घिर आईं और अचरज से कृष्ण की ओर देखने लगीं; पर कृष्ण ने उसे तभी छोड़ा, जब उसकी जान निकल गई।

शकटासुर-वध

एक दिन नन्द-यशोदा ने फिर उत्सव मनाया, खूब दान-पुण्य किया। सब गोकुल का न्यौता किया। दावत दी गई। गाजे-बाजे बजे, खेल-तमाशे हुये। नन्द-यशोदा अपने हाथों से सब को प्रेम से परोस-परोसकर खिलाने लगे। कृष्णजी एक शकट (गाड़ा) के नीचे जमीन पर

सो रहे थे। खुशी में किसी को उनकी खबर ही न थी। इसी समय एक असुर (राक्षस) वहाँ आया। वह कृष्ण को दबाकर मार डालने के लिये शकट पर बैठ गया। गाड़ा चरमरा उठा, टूटने को हो गया। यह देख कृष्ण किलकारी मारने लगे। गाड़ा टूटा, उन्होंने एक लात ऐसी मारी कि गाड़ा अलग जा पड़ा। लात राक्षस की कोख में लगी। वह वहीं कराहता हुआ ढेर हो गया। सब दौड़ पड़े। यशोदा ने घबड़ाकर बालक को गोदी में उठा लिया। सब बोले—"भगवान ने आज बड़ी खैर की, बालक को बचा लिया।"

तृणावर्त्त का वध

एक बार यशोदाजी कृष्ण के पास बैठी कुछ काम कर रही थीं। एकाएक बड़ी जोर की आंधी आई। दिन में ही रात मालूम पड़ने लगी। छप्पर उड़ने लगे। घर-द्वार हिलने लगे। पेड़-पत्ते उखड़-उखड़कर गिरने लगे। चारों ओर इतनी घड़घड़ाहट होने लगी कि कानों के परदे फटने लगे।

आँधी में श्रीकृष्ण भी उड़ गये। यशोदाजी घबड़ाकर हाहाकार करती हुई इधर-उधर उन्हें ढूँढ़ने लगीं। अंधड़ में कुछ दिखाई न देता था। यशोदाजी ठोकरें खा-खाकर गिरती थीं, और कृष्ण-कृष्ण पुकारकर भटकती फिरती थीं।

थोड़ी देर बाद आँधी शान्त हुई। आसमान साफ हुआ। चारों ओर उजाला फैल गया। यशोदा ने देखा, एक राक्षस आंगन में मरा पड़ा है और श्रीकृष्ण उसकी छाती पर सवार होकर खेल रहे हैं। यशोदा ने दौड़कर उठा लिया और छाती से लगा लिया। पीछे मालूम हुआ कि यह कंस का भेजा हुआ तृणावर्त्त राक्षस था जो कृष्ण को मारने के लिए आया था।

माखन-चोर

श्रीकृष्णजी जब कुछ बड़े हुये, दौड़ने-खेलने लगे तो बहुत ऊधमी हो गये। वे अपने आसपास के लड़कों को इकट्ठा कर लेते थे। सुबह होते ही यशोदा के घर लड़कों की भीड़ लग जाती थी और थोड़ी देर बाद सब लड़के श्रीकृष्ण और बलराम के साथ गांव में घूमने-खेलने निकल जाते थे। सभी लड़के श्रीकृष्ण का कहना मानते थे और उन्हें अपना सरदार समझते थे।

श्रीकृष्ण सब ग्वाल-बालों के साथ तरह-तरह के खेल खेलते, खूब ऊधम मचाते। जिसके घर में चाहते घुस जाते और जो कुछ मिलता उठाकर सब लड़कों को बांट देते और आप भी खाते। दूध, दही, माखन, मिश्री का तो उनके मारे बचना ही मुश्किल था। जिसके घर पहुँच जाते

पहले वही ढूँढ़ते। कुछ खाते, कुछ लुढ़काते, फिर खेलते-कूदते अपने घर आते।

गोकुल की औरतों ने जब देखा कृष्ण के मारे दही, माखन मिलना मुश्किल है तो वे उसे छींकों पर रखने लगीं। इतने पर भी उनकी बचत न होती थी। श्रीकृष्ण ईंटें, पत्थर, खाट, मोढ़ा जो मिलता उस पर चढ़कर छींके से दहेड़ी उतार लेते और खा जाते। चलते समय दहेड़ी भी फोड़ जाते।

इसी तरह एक दिन श्रीकृष्ण और बलराम दूसरे ग्वाल-बालों के संग एक ग्वालिनी के घर में घुस गये। ग्वालिनी घर में नहीं थी। इधर-उधर देखा। ऊपर ताका। दही, माखन की दहेड़ियां बहुत ऊँचे पर रखी थीं। सब सोचने लगे—इतने ऊँचे से माखन कैसे उड़ाया जाय। इतने में कृष्ण बोले—"ठहरो, ठहरो, मैंने तरकीब सोच ली। एक लड़का उटकुरुवां घोड़ा बन जावे। उसके ऊपर दूसरा घोड़ा बनकर बैठ जावे। उसके ऊपर तीसरा। फिर मैं सब से ऊपर चढ़कर दहेड़ी उतार दूँगा।" बस, सब लड़के एक दूसरे पर घोड़ा बनकर बैठ गये। सब के ऊपर कृष्ण ख़ुद चढ़कर छींके तक पहुँच गये। बलराम ने बगल में खड़े होकर सहारा दिया। दो दहेड़ी नीचे दे दी। एक पटक दी। एक छींके पर ही टेढ़ी कर दी। दही गिरने

लगा। कोई ऊपर को मुँह करके दही पीने लगा। कोई छीना-झपटीकर उड़ाने लगा। दो लड़के नीचे की दहेड़ियां लेकर बैठे हुओं को खिलाने लगे।

सब खूब हँसते और दही-माखन उड़ाते जाते थे। इसी समय ग्वालिनी आगई। उसने देखा, बहुत से शरारती लड़के खाने में जुटे हैं। उसके चिल्लाते ही भगदड़ मच गई। सब एक दूसरे पर लद-पद गिरने लगे, उठ-उठकर भागने लगे।

और लड़के तो भाग गये; पर कृष्ण पकड़े गये। ग्वालिनी उनका हाथ पकड़कर यशोदा के पास ले चली। रास्ते में श्रीकृष्ण ने धीरे से अपना हाथ छुड़ाकर उसी के लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया, आप आगे ही भागकर घर में जाकर खेलने लगे।

ग्वालिनी गुस्से में जाकर यशोदा को उलाहना देने लगी—"यशोदा ! तुम्हारा कन्हैया बड़ा ढीठ और शरारती हो गया है। रोज़ हमारा दही-माखन खा जाता है। आज मैंने इस माखन-चोर को पकड़ लिया। इसे मना कर दो।"

यशोदा ने कहा—"यह मेरा कन्हैया है, तेरा नहीं है?"

ग्वालिनी लड़के की ओर देखकर शरमा गई। कृष्ण ग्वालिनी को चिढ़ाकर बोले—"मैया, ये सब झूठा मेरा नाम

लगाया करती हैं। मुझसे अपना घर तकवाती हैं, काम कराती हैं, फिर मुझे ही चोरी लगाती हैं।"

माता ने कहा—"माखन-चोर! औरों के घर मत जाया कर।"

बंधन

श्रीकृष्णजी दूसरों ही के घर दही-माखन खाते-लुढ़काते हों, सो बात नहीं। वे अपने घर में भी ऐसे ही उपद्रव किया करते थे। कभी-कभी यशोदा माता खूब छक जाती थीं।

एक दिन कृष्ण के सखा उनके साथ थे। कृष्ण को उपद्रव करने का मौका नहीं मिल रहा था। माता दही बिलो रही थी। बस, आप आकर मचल गये। रोने लगे—"मुझे बड़ी भूख लगी है। अम्मा मुझे खाने को दे।"

मां ने कहा—"लला, नेक ठहर। दही बिलोय लूँ, हाल तोय दही-माखन देती हूँ।"

कृष्ण जमीन में लोट गये, बोले—"ना, अभी दे। बहुत भूख लगी है।"

यह सुनकर यशोदा माखन, मिश्री और रोटी लेने चली गईं; इधर कृष्ण ने ग्वाल-बालों को बुलाकर जल्दी-

जल्दी दूध, दही बांटना शुरू कर दिया। यशोदाजी के आने की आहट पाते ही सब भागे। दही की मटकी फोड़ दी, दही फैल गया। यशोदाजी नाराज हो, कृष्ण को पकड़ने दौड़ीं। कृष्ण इधर-उधर छिपने लगे। बड़ी मुश्किल से पकड़ में आये। यशोदा ने उन्हें रस्सी से ऊखल में बांध दिया फिर सब दही सकेला और घर का काम करने लगीं।

आंगन में ही दो पेड़ खड़े थे। कृष्णजी ऊखल को घसलाते हुए उन पेड़ों के बीच से निकले। ऊखल फँस गया। कृष्ण ने उसे धर खींचा। पेड़ उखड़कर गिर पड़े। पेड़ों के गिरने का धमाका सुनकर यशोदा दौड़ी आईं। जल्दी से कृष्ण को खोल दिया। ईश्वर को धन्यवाद देने लगीं—लड़का पेड़ों से दबा नहीं। दूसरी स्त्रियां अचरज से कहने लगीं, यह लड़का बड़ा बलवान है।

वृन्दाबन जाना और राक्षस मारना

नन्दजी को जब मालूम हुआ कि कंस मेरे कन्हैया के मारने के लिये नित्य नये-नये उपाय रच रहा है और गोकुल में रोजाना दंगा-फसाद बढ़ रहा है तो कुछ लोगों से सलाहकर वे गोकुल छोड़ एक जंगल में आ बसे। वहां बेशुमार वृन्दा (तुलसी) के पेड़ थे। इसलिये उसका नाम भी वृन्दाबन रख दिया।

वृन्दाबन में छोटी-सी बस्ती बस गई। गौओं को भी चारे का पूरा सुभीता था। सब लोग आनन्द से रहने लगे। कृष्ण रोज देखते थे कि लड़के गौओं को बन में चराने के लिये ले जाते हैं।

एक दिन वे माता से बोले—"मां, मैं भी गाएँ चराने जाया करूँगा।" मां ने मना किया; पर कृष्ण हठ पकड़ गये। तब मां ने जाने को कह दिया। अब कृष्ण-बलराम माखन-मिश्री और रोटी बांध लेते, डंडे हाथों में लेते, काले कम्बल ओढ़कर साथियों को साथ ले बन को गाएं चराने निकल जाते। बन में तरह-तरह के खेल खेलते।

कंस से यह बात बहुत दिन न छिप सकी। उसे मालूम होगया कि नन्द वृन्दाबन में रहते हैं। अब वह राक्षसों को भेज-भेजकर कृष्ण को मारने का प्रयत्न करने लगा।

एक दिन कृष्ण बन में गौएँ चराने गये थे। गाएं और बछड़े एक ओर चर रहे थे। कृष्ण सखाओं के साथ दूसरी ओर लुका-छिपी खेल रहे थे। इतने में एक राक्षस बछड़े का-सा रूप रखकर बछड़ों में आ गया। बछड़े डर से रंभाकर इधर-उधर भागने लगे। कृष्णजी ने उसे ध्यान से देखा तो समझ गये कि इसे मारना

चाहिये। वह जैसे ही कृष्ण को मारने की घात में उनके पास आया; उन्होंने पांव पकड़कर उसे दे मारा। वह गिरकर मर गया।

इसी तरह बकासुर, अघासुर, गदर्भासुर आदि कई राक्षसों को उन्होंने खेल-खेल में ही मार डाला।

काली मर्दन

डर तो कृष्ण के पास होकर फटका भी नहीं था। वह लड़का था तो क्या! किसी से भी डरनेवाला न था। उसमें बल और हिम्मत भरपूर थी।

वृन्दाबन में जहां वह बालक कृष्ण खेला करता था। एक बड़ा भारी दह था। उसमें एक बड़ा भयंकर काला सांप रहता था, उसी से उसका नाम कालीदह पड़ गया था। जो कोई जानवर दह पर पानी पीने जाता या कोई आदमी नहाने जाता तो उसे वह सांप काट खाता था। इसी तरह उस सांप ने कितने ही जीवों के प्राण लिये थे।

एक दिन बालक कृष्ण अपने कुछ बाल-गोपालों के साथ दह के किनारे गेंद खेल रहे थे। गेंद की तड़ातड़ी और उछल-कूद में खेलते-खेलते गेंद दह में जा गिरी। सब लड़के थपरी बजाकर एक दूसरे का मुंह ताकने लगे;

पर वह निडर वीर गेंद के पीछे ही दह में धड़धड़ाता घुसता चला गया।

दह में उसका घुसना था कि "फूं फूं" की भयंकर फूफकार दूरतक सुनाई देने लगी। दह का पानी मथा-सा जाने लगा। लड़कों ने घबड़ाकर उधर देखा—वही जहरीला काला सांप फन फैलाये फुसकारता हुआ बालक की ओर लपक रहा था और वह बालक हँसता हुआ उसकी ओर बढ़ रहा था।

वीर बालक को पास आते देख वह कालिया जहर उगलने लगा। दह में लहरें उठने लगीं, उफान आगया। कृष्ण ने लपककर फन में एक लात जमाई, फन घूम गया। अबकी बार उसने बहुत गुस्से में फन फैलाकर दुबारा फुसकार मारी।

कहते हैं उस सांप के काटने से ही उसका शरीर काला पड़ गया और वह कृष्ण कहलाने लगा, पहले वह केवल कन्हैया था। खैर, जो कुछ भी हो यह तो ठीक ही है कि दूसरी उठान में उस बालक ने झपाटे के साथ बढ़ उसका फन पकड़कर कांटे से नाथ दिया और उसमें डोरा डालकर उसे इधर-उधर नचाने लगा।

बाहर के देखने वाले साथी घबड़ा रहे थे। उधर सांप जोर-जोर से फुसकारें मार रहा था; पर वह निडर बालक

उससे खेल कर रहा था। थोड़ी देर में खेला-खेलाकर बालक कृष्ण ने उसे मार डाला और हमेशा के लिये सबका दुख दूर कर दिया।

सबकी जान में जान आई, घबड़ाहट दूर हुई। कृष्ण बाहर आये। साथी लोग खुशी से किलकारियां मारने लगे। फिर खेल जम गया।

गोबर्धन-धारी

एकबार सारे व्रज में घनघोर वर्षा हुई। सात दिन तक रात-दिन मूसलाधार पानी बरसता रहा। चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देने लगा। नदी-नाले तो उतराने लगे। गलियों में भी पानी भर गया। घरों-आंगनों में पानी भर गया। घर बहने लगे। जानवर पानी में उतराने लगे। सब काम-काज बन्द होगये। किसी तरह भी पानी बन्द न होता था। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची थी।

बालक कृष्ण ने देखा--लोग बहुत व्याकुल हुये जा रहे हैं। उससे वह कष्ट देखा न गया। उसने गोबर्धन पर्वत को उठाकर उंगली पर रख लिया और सब से कहा—

"सब लोग इस पर्वत के नीचे आजाओ। इन्द्र को जितना पानी बरसाना हो बरसा लेने दो। अब किसी का कुछ नहीं बिगड़ सकता।"

सब आदमी, पशु-पक्षी सारे के सारे आकर पहाड़ के नीचे खड़े हो गये, बैठ गये। सबका दुख दूर होगया। हार मानकर पानी बन्द होगया। सब लोग बालक कृष्ण की जै-जैकार करने लगे। ब्रज-भूमि में खुशियां मनाई गईं।

बंसीवाला

श्रीकृष्ण को बन-पर्वतों के दृश्य बहुत प्यारे थे। वे गौओं के लिये दिन-दिन भर जमुना के किनारे, जंगलों में घूमा करते थे। जब गाएं चरने लग जाती थीं तब कृष्ण गोपालों के साथ तरह-तरह के खेल खेला करते थे। बंसी उनका बहुत प्यारा बाजा था और वे उसे बजाते भी ऐसा अच्छा थे कि सुननेवाले मोहित हो जाते थे। बांसुरी की आवाज़ सुनकर गाएं चरना छोड़ देती थीं। दूर पर चरती हुई गाएं पास आजाती थीं।

लड़के-लड़कियां खेलना-खाना छोड़ देती थीं। चिड़ियां चहचहाना छोड़कर उनकी ओर देखने लगती थीं। जंगली जानवर आपस का बैर छोड़कर भीड़ लगा लेते थे।

गोपाल

गाएं तो श्रीकृष्णजी से ऐसी हिल गई थीं कि जिस दिन वे चराने न जाते थे, उस दिन वे उदास हो जाती थीं, घास चरना और पानी पीना कम कर देती थीं। कृष्णजी ने गायों के नाम रख रखे थे। जब कोई गाय चरते-चरते दूर निकल जाती तो वे उसका नाम पुकारकर बुला लेते थे। वह नाम सुनते ही आ जाती थी।

कृष्णजी कभी-कभी लड़के-लड़कियों को साथ लेकर घंटों नाचा-कूदा करते थे। आजकल जो लोग रासलीला करते हैं वे उसी की नक़ल उतारते हैं।

कृष्ण को मारने के कंस के जब सब उपाय व्यर्थ गये और धीरे-धीरे अनेक राक्षस मारे गये तो उसे पूरा निश्चय हो गया कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक यही कृष्ण है, जो वृन्दावन में रहता है और नन्द का बालक कहलाता है।

कंस ने बिचारा—कृष्ण इस प्रकार तो मरेगा नहीं। इसलिये यहां मथुरा में ही बुलाकर किसी तरह जल्दी मरवा डालना चाहिये। यह अभी बालक है, तब तो इतना बहादुर है, यदि बड़ा हो जायगा तो न मालूम क्या गज़ब करेगा! हमें तो निश्चय ही मार डालेगा।

ऐसा सोचकर कंस ने अक्रूर को कृष्ण के बुलाने के लिये भेजा। अक्रूर बहुत सज्जन थे, कृष्ण को बहुत प्यार करते थे। वे उन्हें बुलाने नहीं जाना चाहते थे; पर क्या करते? कंस के डर के मारे मजबूर थे।

उन्होंने वृन्दावन पहुँचकर नन्द-यशोदा को कंस का संदेशा सुनाया। यशोदा जिस बात से रात-दिन डरती थीं, वही सामने आई। वे दुख से पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। बात सब में बिजली की तरह फैल गई। बात की बात में नन्द के दरवाजे भीड़ लग गई। नन्हा, बूढ़ा, जवान, मर्द, औरत जिसने सुना वही उदास मुंह लिये दौड़ा। सब में उदासी छागई। रोना-पिटना मच गया। कोई नहीं चाहता था कि कृष्ण उस दुष्ट के सामने भी जायं; पर कंस के डर के मारे किसकी हिम्मत थी, जो उन्हें जाने से रोकता।

सब रोते थे; पर कृष्ण हंसते थे। उन्हें ख़ुशी थी कि मथुरा देखने को मिलेगा। मां-बाप देखने को मिलेंगे और राजा कैसा होता है, सो देखने को मिलेगा।

ब्रज-वासियों को रात में दुख के कारण नींद न आई। कृष्ण ख़ुशी के मारे न सोये। राम राम कर सबेरा हुआ। कृष्ण के जाने की तैयारी होने लगी। कृष्ण, बलराम और अपने दो-चार ग्वाल-बालों को संग ले चलने को तैयार हुए।

उस समय का विचित्र हाल था। सब की नज़र कृष्ण की ओर थी। गौएं रंभा रही थीं। लड़के धाड़ मारकर रो रहे थे। बूढ़े आंसू-भरी आंखों से आशीर्वाद दे रहे थे। औरतें कपड़ों में मुंह छिपाये विलपती थीं, कि कहीं देखने से फुफकार न छूट पड़े। वे मिन्नतें मना रही थीं। नन्द-यशोदा की कुछ न पूछो, बदहोश थे, तन-मन की सुध न थी। कभी-कभी चीख के साथ 'कन्हैया' निकल पड़ता था। कृष्ण गोकुल के बाहर थे और सब उनके पीछे।

इसी हाहाकार के बीच कृष्ण ने मां-बाप के पैर छुए, बड़े-बूढ़ों को प्रणाम किया, साथियों को खिलखिलाकर गले लगाया और मथुरा की ओर बढ़े। कृष्ण के साथ सभी मथुरा जाना चाहते थे; पर अक्रूर ने समझाया और रोका। कृष्ण जब तक दिखाई पड़े, सब एक टक उनकी ओर देखते रहे, जब वे आंखों से ओझल हो गये तो सब मन मारे अपने-अपने घर लौटे। सभी भोर उठ ईश्वर से कृष्ण के कल्याण की प्रार्थना करने लगे।

काली कमरी वाला

कृष्ण मथुरा पहुँचे। वहां भी तमाम शहर में शोर मच गया, "कंस का मारनेवाला आ गया"। सांवरी सूरत गठीली देह, हाथ में बंसी, सिर पर मोरछल, बगल में

काली कमरी मुसकराते हुए कृष्ण जब मथुरा की गलियों में निकले तो सब की आंखें उन्हीं पर गड़ गईं, हजारों-उंगलियां एक साथ उठ गईं "देखो, यही कृष्ण है जो कंस को मारनेवाला कहाता है। कैसी भोली सूरत है, मुसकान मन को हरती है। ओह! कंस कैसा अत्याचारी है, इस दुधमुंहे बच्चे को मारेगा। भगवान इसका भला करियो, यही बात सच निकले कि कृष्ण कंस का मारने वाला होगा।"

एक धोबी सड़क पर कपड़े लिये जा रहा था। कृष्ण ने पूछा—किसके कपड़े हैं?

धोबी ने कहा—महाराज कंस के।

इतना कहना था कि कृष्ण-बलराम ने उसके सब कपड़े छीन लिये। गठरी खोलकर कपड़े बाल-गोपालों ने पहन लिये।

मालिनियों के फूल लूट लिये। किसी ने कुछ न कहा। इसी तरह हंसते-खेलते कृष्ण कंस दरबार में पहुँचे। उनकी निडरता और बाल-लीलाओं से सभी चकित थे।

वीर कृष्ण

कंस की ड्योढ़ी पर मतवाला हाथी झूम रहा था। उसका नाम कुवलयापीड़ था। महावत ने कृष्ण को देखते

ही हाथी को उन पर हूल दिया। कृष्ण एक ही छलांग में फुर्ती से सूंड़ के नीचे से निकलकर दूर जा खड़े हुए। हाथी ने दुबारा सूंड़ घुमाई। कृष्ण झपटकर सूंड़ पर चढ़ गये। बलराम ने पूंछ धर खैंचीं। कृष्ण ने जोर से सूंड़ उमेठी। हाथी चिंघाड़ उठा, महावत धरती में लोटने लगा कृष्ण-बलराम उसके दांत तोड़ भीतर घुसे। कंस की यह चाल भी बेकार हुई।

दोनों भाई कुछ ही आगे बढ़े थे कि दो मल्ल जिनके नाम मुष्टिक और चाणूर थे, उस छोटे-से बालक से लड़ने आगये। बालक कृष्ण उनको नीचे से ऊपर तक देखकर हँसा, फिर ततैया की तरह उनसे ऐसी जोर से चिपट गया कि उन्हें अपना प्राण बचाना मुश्किल हो गया।

उन्हें मारकर सब भीतर घुसे। कृष्ण आगे-आगे थे बलराम और सखा लोग उनके पीछे। कृष्ण ने सामने देखा—कंस एक ऊंचे सिंहासन पर बैठा हुआ था। उसकी आंखें लाल हो रही थीं। इधर-उधर खड़े हुए लोग डर से थर-थर कांप रहे थे। सभी को कृष्ण की भोली सूरत पर तरस आ रहा था। कंस क्रोध से दांत पीस रहा था। उसने कृष्ण को देखते ही डपटा—"अरे दुष्ट छोकरे, इधर आ।"

कृष्ण बिना कहीं रुके सिंहासन पर चढ़ते चले गये। कंस जब तक तलवार म्यान से निकाले-निकाले,

कृष्ण उसके बाल पकड़कर उसे नीचे ढकेलते हुए बोले—"ले आगया, कह, क्या कहता है बदमाश! तूने लोगों को बहुत सताया है। चारों ओर आफत मचा रखी है।"

ऐसा कहकर बली कृष्ण ने उसका घमंड मिट्टी में मिला दिया। मुकुट धरती में लोटने लगा। कंस और उसका अत्याचार, दोनों दुनिया से उठ गये। वह वीर बालक हँस रहा था। सब लोग अचरज से दांतों तले उंगली दबाये उसकी ओर देखते थे और कहते थे—"ओह! ऐसा वीर बालक! धन्य है।"

बेकसूर कैदी, जिन्हें कंस ने जेलखाने में बन्द कर रखा था, छोड़े गये। कृष्ण ने कंस के पिता उग्रसेन को कैद से छुड़ाकर बड़े आदर से गद्दी पर बैठाया। कैद से छूटे हुए वसुदेव-देवकी की खुशी का ठिकाना न था। तमाम मथुरा में घी के चिराग जलाए जा रहे थे। सब के जबान पर कृष्ण के लिये वाह-वाह की झड़ी लगी थी। बूढ़ों के आशीर्वाद, औरतों की मिन्नतें और लड़कों की खुशियां पूरी हुई।

कंस को मारकर वसुदेव-देवकी सहित कृष्ण-बलदेव वृन्दावन पहुँचे। नन्द-यशोदा फूले न समाते थे। कई दिन तमाम ब्रज में उत्सवों की खूब धूमधाम रही।

शिक्षा

बचपन में ही कृष्ण की बहादुरी दूर-दूर तक फैल गई। सब उनके बल पर अचरज करने लगे और उनकी तारीफ करने लगे।

वसुदेवजी ने यथासमय कृष्ण-बलदेव के यज्ञोपवीत संस्कार किये। फिर उन्होंने विचारा जिस प्रकार कृष्ण बलवान है, उसीप्रकार इसे विद्वान भी बनाना चाहिए। यहां खेल-कूद और स्वाभाविक चंचलता से कृष्ण की पढ़ाई ठीक न हो सकेगी। यहां कोई बड़ा पंडित भी नहीं है, जिससे कृष्ण की अच्छी पढ़ाई हो सके। वसुदेव-देवकी ने ऐसा विचारकर कृष्ण-बलदेव दोनों को काशी पढ़ने के लिये भेज दिया। काशी में एक बड़े भारी पण्डित रहते थे। उनका नाम सन्दीपन ऋषि था। ऋषि के पास उस समय बहुत दूर-दूर से लड़के विद्या पढ़ने आया करते थे। कृष्ण-बलदेव भी उनके पास जाकर विद्या पढ़ने लगे।

विद्या पढ़नेवालों में सुदामा नाम का एक ब्राह्मण का लड़का भी था। वह बहुत सीधा, सुशील और पढ़ने में तेज था। श्रीकृष्णजी का उससे बहुत प्रेम हो गया। प्रायः दोनों हर समय साथ रहा करते थे।

एक दिन सन्दीपन ऋषि ने कृष्ण और सुदामा को जंगल में लकड़ी लाने को भेजा। जंगल में सुदामा ने पेड़ों

पर चढ़कर लकड़ी तोड़ी। कृष्ण ने उन्हें बीन-बीनकर इकट्ठा किया। इसी बीच बादल घिर आये, बिजली चमकने लगी और मूसलाधार पानी बरसने लगा। कृष्ण-सुदामा दोनों सिकुड़कर पेड़ के नीचे बैठ गये।

शाम हो गई; पर पानी का बरसना बन्द न हुआ। जब पानी बन्द हुआ तो रात हो गई। अंधेरा छा गया, रास्ता न दिखाई देने लगा। अब दोनों क्या करते, वहीं पेड़ के नीचे पड़ रहे।

कृष्ण को भूख लगी। सुदामा के पास चने बंधे थे, उन्होंने चने निकाले। दोनों ने हंस-हंसकर चने चबाए, पानी पिया। फिर दोनों लेट रहे। रात में कृष्ण को जाड़ा लगा। वे थर-थर कांपने लगे।

उन्होंने कहा—भैया, जाड़ा बहुत है।

सुदामा अपने कपड़े उतारकर कृष्ण को पहनाने लगे।

कृष्ण ने कहा—ना, मैं नहीं पहनूंगा, तुम जड़ाओगे।

सुदामा ने कहा—तुम मेरी चिन्ता न करो।

ऐसा कहकर उन्होंने कपड़े कृष्ण को जबर्दस्ती पहना दिये। आप रातभर जाड़े से कांपते रहे।

किसी तरह राम-राम करते सबेरा हुआ, धूप निकली। सुदामा लकड़ी का गट्ठा लेकर गुरु के पास आये। उस

दिन से कृष्ण का सुदामा से अटूट प्रेम हो गया, वे सुदामा को अपना बड़ा भाई समझकर बहुत आदर करने लगे।

सन्दीपन गुरु की शिक्षा से थोड़े ही दिनों में कृष्ण-बलदेव और सुदामा पूरे पण्डित हो गये।

सन्दीपन ऋषि के लड़के को पंचजन राक्षस पकड़ ले गया था। उन्होंने गुरु-दक्षिणा में कृष्ण से यही चाहा कि उस राक्षस को मारकर मेरा लड़का ला दो। कृष्ण ने ऐसा ही किया। गुरु ने हृदय से आशीर्वाद दिया। कृष्ण-बलदेव अपने घर चले आये और सुदामा अपने घर चले गये।

मथुरा छोड़ द्वारिका जाना

विद्या में पूरे पण्डित होकर कृष्ण अपने घर आकर आनन्द से मां-बाप के साथ रहने लगे।

इधर मथुरा में भी उग्रसेन के राज्य से सब प्रजा सुख से रहने लगी; परन्तु कंस के ससुर जरासंध को यदुवंशियों पर बड़ा क्रोध आया; क्योंकि उन्होंने उसके दामाद कंस को मार डाला था।

जरासंध भी बड़ा अत्याचारी, घमंडी और पाजी राजा था। उसने भी कितने ही बेकसूर आदमियों और बहुतेरे छोटे-छोटे राजाओं को कैद कर रखा था।

कंस का बदला लेने के लिये उसने अपनी फौज तैयार करके कृष्ण पर धावा बोल दिया; लेकिन मुंह की खानी पड़ी। हारने पर वह और भी चिढ़ा। उसने लड़ाइयों का तांता बांध दिया। इस तरह एक-दो बार नहीं; उसने सत्तरह बार कृष्ण-बलदेव पर चढ़ाई की; पर दोनों भाइयों ने हर बार उसको ऐसा मजा चखाया कि सेना की हिम्मत टूट गई। बार-बार की लड़ाई में उसकी सेना तहस-नहस हो गई। लेकिन बार-बार हारने पर भी अभिमानी जरासंध मानता न था। वह बार-बार टिड्डी-दल के समान सेना बटोरकर श्रीकृष्ण पर चढ़ आता था।

बार-बार की लड़ाई से प्रजा का दुख और अपने सुख में अशान्ति तथा चिन्ताएं देखकर श्रीकृष्णजी ने वृन्दाबन छोड़ देना ही उचित समझा।

अपने सब यदुवंशियों सहित वे द्वारिकापुरी में जा बसे। वहीं राजधानी बनाई। द्वारिकापुरी गुजरात से आगे समुद्र में बसी हुई है।

प्यारे बालको! तुम समझते होगे कि श्रीकृष्णजी ने अपने दुख को दूर करने के लिये और अपने आप सुख भोगने के लिये ये तमाम बातें कीं, और द्वारिका के राजा होकर मौज उड़ाने लगे।

किन्तु यह बात नहीं। श्री कृष्णचन्द्र का तमाम जीवन संकटों के बीच बीता। उन्होंने दूसरों के दुख दूर करना, अन्याय अत्याचार को मिटाना, धर्मात्माओं की रक्षा करना और बुराइयों को खोद बहाना ही अपने जीवन का सुख समझा। वे सुख की नींद कभी नहीं सोये। उन्होंने अपनी तमाम जिन्दगी दुखियों की सेवा करने और निर्बलों की सहायता करने में बिताई। द्वारिका में आकर वे चुप न बैठे। तुम आगे पढ़ोगे कि उन्होंने कितने-कितने बहादुरी के काम किये, इसी से भगवान कहलाये।

सुधारक कृष्ण

विवाह

श्रीकृष्ण का बचपन समाप्त हुआ। उन्होंने जवानी में पैर रखा। वसुदेव आदि को श्रीकृष्ण के विवाह की चिन्ता हुई। वे इधर-उधर सुशील कन्या की टोह में रहने लगे।

आनर्त देश के राजा रेवत के एक लड़की थी। उसका नाम रेवती था। रेवत ने उसकी सगाई-बलदेव से कर दी। बलदेव का विवाह रेवती के साथ हो गया।

विदर्भ देश में कुंडलपुर नाम का एक नगर था। वहां राजा भीष्मक राज्य करते थे। उनके भी एक लड़की थी। उसका नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी जब विवाह के

योग्य हुई तो उसके पिता ने अच्छा लड़का ढूँढ़ने के लिये चारों ओर आदमी भेजे।

कृष्णजी की बहादुरी की चर्चा दूर-दूर तक फैल ही चुकी थी। इसलिये भीष्मक को जब उनकी याद आई तो उन्होंने सबसे सलाह की कि क्यों न कृष्ण के ही साथ रुक्मिणी का विवाह कर दिया जाय। और लोग तो भीष्मक की बात से राजी हो गये; पर भीष्मक का लड़का रुक्म बिगड़ उठा।

वह बोला—उस गंवार के साथ मेरी बहन का ब्याह। जिसकी जात-पांत का ठिकाना नहीं। पता नहीं कौन मां-बाप है, किसका वह पुत्र है, कोई उसे नन्द का लड़का मानता है, कोई वसुदेव का जानता है। ऐसे अहीर के लड़के से हम राजा लोग सम्बन्ध करेंगे? कभी नहीं। हम तो चंदेरी के राजा शिशुपाल से रुक्मिणी का ब्याह करेंगे जो बड़ा बलवान और प्रतापी है।

सब ने रुक्म को समझाया कि इस समय कृष्ण थोड़ी उम्र होने पर भी सबसे अधिक बहादुर और विद्वान है। यह भी सब जान गये हैं कि वह वसुदेव का पुत्र है। एक योग्य, सुन्दर, बलवान, विद्वान लड़के के साथ कन्या का विवाह न करके इधर-उधर भटकना बुद्धिमानी नहीं।

परन्तु रुक्म ने किसी की एक भी न सुनी। भीष्मक भी लाचार हो गये। रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल के साथ कर दी गई। विवाह की तैयारियां होने लगीं।

रुक्मिणी कृष्ण की बहादुरी की कहानियां सुन चुकी थी। वह एक पढ़ी-लिखी योग्य लड़की थी। उसने यह भी सुन रखा था कि शिशुपाल घमंडी और अत्याचारी राजा है। इसलिये वह कृष्ण के ही साथ अपना विवाह करना चाहती थी।

जब उसने देखा मेरा विवाह जबर्दस्ती शिशुपाल के साथ किया जाता है तो उसने गुपचुप एक पत्र श्रीकृष्ण को ही लिखा। उसमें उसने उन्हीं से ब्याह करने की प्रार्थना की।

कृष्णजी ने वह पत्र अपने पिता वसुदेव को दिखाया और आज्ञा मांगी कि मुझे सेना दीजिए। यदि भीष्मक रुक्मिणी की इच्छानुसार उसका विवाह मुझसे न करे तो मैं लड़कर ब्याह कर लाऊँ।

पिता ने खुशी से आज्ञा दे दी। कृष्ण आगे रथ लेकर चले। बलदेव पीछे से सेना सजाकर। कृष्ण जब भीष्मक के यहां पहुँचे तो उन्होंने उनका बड़ा आदर किया और कहा—मैं तो रुक्मिणी का ब्याह आपके ही साथ

करना चाहता था पर रुक्म न माना। नगर के सब देखने-वालों ने भी रुक्मिणी को कृष्ण के ही योग्य बताया। तब तो कृष्ण अपने विचारों पर और भी अटल हो गये। उसी दिन रुक्मिणी बाग में घूमने गई और कृष्णजी से जाकर मिली। कृष्ण उसे उसी समय रथ पर बैठाकर द्वारिका ले आये। वेद की विधि से धूमधाम से दोनों का विवाह हुआ। घर-घर बधाई बजी। सारी द्वारिकापुरी में कई दिन आनन्द छाया रहा।

रुक्मिणी का ले जाना सुनकर शिशुपाल आदि राजा बहुत बिगड़े। कई दुष्ट राजाओं ने सलाह करके श्रीकृष्ण पर चढ़ाई की; पर कृष्ण-बलदेव ने सब को मार भगाया।

मित्र कृष्ण

सखा प्रेम

श्रीकृष्णचन्द्र कितने निरभिमानी थे। उनका जीवन कितना प्रेम-पूर्ण था। इसकी भी एक मीठी कहानी।

आजकल जब आदमी ऊंचे पद पा जाते हैं या धनवान हो जाते हैं तो उनके अभिमान का ठिकाना नहीं रहता। वे बचपन के गरीब दोस्तों को दोस्त कहते हुये शरमाते हैं। उनसे व्यवहार करना तो दूर, बोल-चाल तक बन्द कर देते हैं, पहचानते ही नहीं हैं।

महापुरुष कृष्ण का जीवन इससे भिन्न था। पीछे यह बतलाया जा चुका है कि कृष्ण और सुदामा एक साथ पढ़ते थे। दोनों विद्या पढ़कर अपने-अपने घर चले गये।

कृष्ण तो राजा होकर राजसुख भोगने लगे। सुदामा तपस्वी और त्यागी ब्राह्मण था। वह और भी गरीब हो गया।

पढ़ने के बहुत दिन बाद ऐसा समय आया जब सुदामा को भोजनों के भी लाले पड़ने लगे। स्त्री बच्चे भूखों मरने लगे। फिर भी सुदामा सन्तोषी ब्राह्मण थे, वे समझते थे भगवान का भक्त गरीब ही अच्छा है। ब्राह्मण को धन की क्या दरकार! वे अपनी उस गरीबी में भी कभी-कभी अपनी स्त्री से बचपन की अपनी और श्रीकृष्ण की दोस्ती की बातें करते हुये मग्न हो जाते थे। उनकी आंखों से आंसू निकलने लगते थे। वे कृष्ण की बड़ाई करते थकते न थे।

एक दिन सुदामा की स्त्री ने बहुत दुखित होकर उनसे कहा—वही कृष्ण तुम्हारे मित्र हैं? तुम उन्हीं की बातें किया करते हो, जो द्वारिका में रहते हैं? जो राजा हैं? जिनकी सब लोग तारीफ करते हैं?

सुदामा ने कहा—हां, उसी कृष्ण से मेरी बड़ी दोस्ती थी।

स्त्री—वह तो सुनते हैं, बड़े दयालु हैं, सब का दुख दूर कर देते हैं !

सुदामा—हां, सचमुच वे ऐसे हैं।

स्त्री—तो तुम भी एक बार उनके पास क्यों नहीं जाते ? जाओ, आज ही जाओ, जरूर जाओ। हम तो तभी दयालु जानें जब वे हमारा दरिद्र नसा दें। सुदामा ने बहुतेरा समझाया "मैं मांगने न जाऊंगा"; पर स्त्री ने एक न माना। लड़-झगड़कर उसने सुदामा को द्वारिका जाने के लिये तैयार ही कर दिया।

बड़े आदमी के पास जाना था। कुछ भेंट जरूर चाहिये। घर में खाने को एक दाना भी नहीं। स्त्री पड़ोस से एक अँजुरी चावल मांग लाई। फटे चिथड़े में बांध दिये।

बगल में चावलों की पोटली, कांधे पर लोटा-डोर, हाथ में लाठी, दीन-दुबले सुदामा द्वारिका को चले। मन में मांगने का सोच उन्हें आगे न बढ़ने दे और भगवान से मिलने की खुशी जल्दी चलने को कहे। वे यह भी सोचते थे कि बचपन की दोस्ती, शायद मुझसे मिलेंगे भी या नहीं, अब कृष्ण बड़े आदमी हो गये। खूब सोच-विचारकर उन्होंने तै कर लिया—मैं कुछ मांगूगा नहीं, पर चलूं हो आऊं। बहुत बरसों में उनसे मिला-

नहीं, मिला-भेंटी तो हो ही जायगी। और न मिले तो लौट आऊंगा, मेरा बिगड़ता ही क्या है।

इसी तरह भांति-भांति के विचार करते सुदामा द्वारिकापुरी पहुँचे। उन्होंने कभी राजमहल के दरवाजे तक न देखे थे, सो ऊंचे-ऊंचे मकान, आंख फाड़-फाड़कर चारों ओर देखने लगे।

डरते-डरते ड्योढ़ी पर पहुँचे। सन्तरी ने दूर से ही नंगे-धड़ंगे, चीथड़ा लपेटे, बिना जूता टोपी कपड़ावाले, दुबले पतले आदमी को देखकर फटकारा—अबे! इधर कहां चला आता है। देखता नहीं ये किसके महल हैं, क्या अन्धा है? दूर भाग।

सुदामा ने कहा—भाई! क्या किसन के मकान ये ही हैं?

सन्तरी ने कहा—अबे कैसे बोलता है? ठीक किया जायगा। ये राजाधिराज भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी के भवन हैं। तुझे इनसे क्या मतलब। झटपट यहां से भाग।

सुदामा ने कहा—मैं उसी किसन से मिलने आया हूँ। किसन हो तो भीतर जाकर खबर कर दो।

सन्तरी ने कहा—किसन से तू मिलेगा? क्या होश में नहीं है, पागल होगया है। कमर में लंगोटी तक नहीं। चला है भगवान से मिलने। जा, जा।

सुदामा ने कहा—तुम जाकर उससे कह तो दो कि तुम्हारा साथी सुदामा ब्राह्मण मिलने आया है। फिर यदि वह न मिलेगा तो मैं चला जाऊंगा।

बहुत कहा-सुनी के बाद सन्तरी भीतर गया। कृष्णजी सिंहासन पर बैठे रुक्मणी से हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। सन्तरी ने प्रणाम किया।

श्रीकृष्ण ने पूछा—क्या है ?

सन्तरी ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज !

शीश पगा न झगा तन में,
प्रभु ! जानै को आय बसै केहि धामा,
धोती लटी सी फटी दुपटी,
अरु पैर उपानत और न सामा।
द्वार खड़ो द्विज-दुर्बल एक,
रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा,
पूछत दीनदयाल को धाम,
बतावत आपन नाम सुदामा।

सरकार ! एक बड़ा दुबला-पतला गरीब ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है। उसके सिर पर न पगड़ी, न पैर में जूता। एक चिथड़ा कमर से लपेटे है, एक बगल में दाबे है। बड़े

अचरज से आखें फाड़-फाड़कर राजमहल देख रहा है। आपको पूछता है और अपना नाम सुदामा बताता है।

सुदामा नाम सुनते ही श्रीकृष्ण ने कहा—उन्हें फौरन लाओ, साथ ही आप भी उठकर दरवाजे की ओर दौड़े। सन्तरा पीछे रह गया, आप आगे निकल गये। सुदामा को देखते ही छाती से चिपट गये। खूब दिल लगा कर मिले, आंखों से प्रेमाश्रु निकल आये। सुदामा ने समझा कृष्ण मुझसे मिल लिये, मैं इतने ही से सब कुछ पा गया।

भीतर लेजाकर कृष्ण ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। आप नीचे बैठे। कुशल-मंगल पूछा। फिर रानी को आज्ञा दी—"पैर धोने के लिये परात और पानी लाओ।"

सब नौकर-चाकर दास-दासियां चकित थीं। रानी की समझ में भी कुछ न आता था कि कृष्ण यह क्या कर रहे हैं, एक ऐसे दारद्री का इतना आदर करने में क्यों लगे हैं।

कोई कुछ बोल न सकता था। सब चुपचाप, जल्दी-जल्दी काम में लगी थीं। कोई पानी लाया, कोई परात, कोई झारी लाया, कोई पै-पोंछना।

परात में पैर रखकर श्रीकृष्णजी पैर धोने को हुये। रुक्मिणी ने पानी डालने को झारी उठाई। कृष्ण ने

सुदामा के पैर हाथों में लिये, देखा वे खुरदरे हो रहे हैं, बड़ी-बड़ी बेवाई फट रही हैं। यही नहीं—

ऐसे बिहाल बिवाइन ते,
पग कण्टक जाल गड़े पुनि जोये,
हाय महा दुख पायो सखा,
तुम आये इतै न किते दिन खोये ?
देखि सुदामा की दीन-दशा,
करिके करुणा करुणानिधि रोये,
पानी परात न हाथ छुयो प्रभु,
आंखिन आंसुन सों पग धोये।

बेवाइयां फट रही थीं। जगह-जगह कई-कई कांटे एक साथ गड़े थे। कृष्ण मित्र की यह हालत देखकर विकल हो गये। रोआई आ गई। वे मुंह से इतना ही बोल सके—मित्र ! तुमने तो बड़ा दुख पाया। इतने दिन कहां रहे ? यहां क्यों नहीं आये......

इसके आगे वे बोल न सके। झर-झर, झर-झर आंसू झरने लगे। हिचकी बँध गई। देखनेवालों की आंखें डबडबा आईं। परात का पानी हाथ से छूना तक न पड़ा। आंसुओं से ही पैर धुल गये।

थोड़ी देर बाद कृष्ण ने किसी तरह अपने को संभाला। सुदामा के पैर पोंछे। परात का जल

घर में छिड़कवाया। बाले—आज मेरे महल पवित्र हो गये।

सुदामा ने अच्छे कपड़े पहने। जलपान किया, फिर दोनों की घुल-घुलकर बातें होने लगीं। कृष्ण ने पूछा—मेरी भाभी अच्छी तरह हैं? उन्होंने मेरे लिये कुछ भेजा नहीं? भेजा जरूर होगा। लाओ, कहां छिपा रखा है, देते क्यों नहीं? तुम यार बचपन में भी मुझे ऐसे ही छकाया करते थे! बड़े चालाक हो।

सुदामा मांगने के नाम से ही पोटली को शरम के मारे और पीछे छिपाने लगे। बोले—तुम्हारी भाभी ने मुझे कुछ भी नहीं दिया।

कृष्ण ने देखा—सुदामा कुछ पीछे सरका रहे हैं तो बोले—दिया कैसे नहीं, यह बगल में क्या छिपाते जाते हो? जरूर कुछ भेजा है। अकेले ही खा जाना चाहते हो? क्यों, लाओ इधर।

ऐसा कहकर कृष्ण ने वह पोटली धर खींची। छीना-झपटी में, पुराना चिथड़ा फट गया, चावल फैल गये।

श्रीकृष्ण ने उन्हें बटोरा और दो फंके लगाये। कहा—वाह! भाभी ने ये चावल तो बहुत बढ़िया भेजे, खूब मीठे हैं। तुम बड़े झूठे हो, देना नहीं चाहते थे।

रात में दोनों एक जगह सोये। कृष्ण बहुत देर तक सुदामा के पैर दाबते रहे। चुपचाप उन्होंने नौकरों को बुलाकर कह दिया कि सुदामा के घर जाकर बड़े भारी-भारी सुन्दर-सुन्दर महल बनवा दो और उन्हें नौकर-चाकर धन-धान्य से पूरा कर दो। किसी बात की कमी न रहे। सब काम बहुत जल्दी हो।

श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार सुदामा का सब दरिद्र हमेशा के लिये मिट गया। कुछ दिन सुदामा उनके यहां रहे। न सुदामा ने कृष्ण से कुछ मांगा, न कृष्ण ने सुदामा को कुछ बताया। जब सुदामा घर चले तो रास्ते में यह सोचकर बहुत खुश होते जाते थे कि बहुत अच्छा हुआ जो मैंने कुछ मांगा नहीं, नहीं तो कृष्ण समझते, यह मंगता है। मित्र से भेंट तो हो गई। मैं गरीब ही भला हूँ। मुझे रुपया-पैसा क्या करना है।

जरासंध बध

श्रीकृष्ण का जन्म राजसुख भोगने के लिये नहीं हुआ था। वे दुनिया में उथल-पुथल पैदा करने के लिये पैदा हुये थे। ढोंग, पाखण्ड, अन्याय को मिटाने के लिये पैदा हुये थे। वे संसार के सामने मनुष्य का आदर्श रखना चाहते थे। इसीलिये राजगद्दी पर उन्होंने इने-गिने ही दिन बिताये।

वसुदेव के एक बहन कुन्ती थी। कुन्ती का विवाह हस्तिनापुर के राजा शान्तनु के बेटे पाण्डु से हुआ था। पाण्डु श्रीकृष्ण के फूफा लगते थे। पाण्डु दो भाई थे। पाण्डु और धृतराष्ट्र। पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पाँच पुत्र थे और धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुशासन आदि सौ पुत्र थे। पाण्डु के पुत्र पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाते थे।

युधिष्ठिर आदि बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी, सज्जन और सच्चरित्र थे। दुर्योधन आदि दुष्ट अन्याई, अधर्मात्मा घमंडी और बदमाश थे। पाण्डु मर चुके थे। धृतराष्ट्र राजगद्दी पर थे। न्याय से धृतराष्ट्र के बाद राजगद्दी युधिष्ठिर को मिलनी चाहिये थी; परन्तु दुर्योधन खुद राजा बनना चाहता था। इसलिये वह पाण्डवों से बहुत जलता था और उन्हें किसी तरह मिटा देना चाहता था।

द्रोणाचार्य कौरव-पाण्डवों के गुरु थे। भीष्म पितामह उनके बाबा थे। विदुर दासी के पुत्र थे; पर धृतराष्ट्र के भाई थे। सबने बहुत चाहा कि दुर्योधन पापकर्मों से हट जाय और पाण्डव-कौरव सब आपस में मेल से रहें; परन्तु दुर्योधन न माना। उसने पांडवों के मारने के अनेक उपाय किये। जहर दिलवाया, घर में आग लगवा दी।

दुर्योधन ने सब कुछ किया; पर पांडवों का बाल भी बांका न हुआ। बात-बात में द्रोह और झगड़ा देखकर

पांडवों ने एक बड़ा जंगल साफ करवाकर वहां इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया, जिसे अब दिल्ली कहते हैं।

इन्द्रप्रस्थ बसाकर युधिष्ठिर ने अपनी नई राजधानी कायम की। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को बुलाकर कहा—भाई! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ, तुम्हारी क्या सलाह है?

श्रीकृष्ण ने कहा—बहुत अच्छा है। यज्ञ करिये; पर यह तो आप को मालूम है जो चक्रवर्ती (सबसे बड़ा) राजा कहलाना चाहता है, वही राजसूय यज्ञ कर सकता है। इसलिये पहले जरासंध से युद्ध करके उसे हराओ। उसने सैकड़ों छोटे-बड़े राजाओं को बेकसूर अन्यायपूर्वक जेलों में बन्द कर रखा है। उनके बिना छूटे यज्ञ सफल कैसे हो सकता है।

युधिष्ठिर ने कहा—जरासंध किस प्रकार मारा जाय। धन, जन का नाश हुए बिना केवल उसी अत्याचारी का नाश हो, ऐसा उपाय करना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने कहा—हम अर्जुन और भीम वहां जाकर उसे मार देंगे।

ऐसा निश्चय होने पर भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण जरासन्ध की राजधानी में पहुँचे। तीनों ब्राह्मण का वेश बनाकर राजमहल में घुसे। दरबार में जाकर देखा,

जरासन्ध गद्दी पर बैठा, ढूंढ़-ढूंढ़कर ब्राह्मणों को मारने की आज्ञा दे रहा था। ये लोग जाकर सामने खड़े हो गये।

जरासन्ध ने पूछा—तुम लोग कौन हो, यहां कैसे आये ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हम लोग क्षत्रिय हैं। हमारे नाम श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन हैं। तुम से युद्ध करने आये हैं।

जरासन्ध यह सुनते ही तमतमा उठा। क्रोध से आंखें लाल हो गईं। दांत पीसकर बोला—बदमाशो ! चालाकी से तुम लोग यहां घुस आये। सब एक साथ मुझसे लड़ना चाहते हो। शरम नहीं आती ? एक-एक लड़ना चाहते हो तो आ जाओ। कृष्ण ! मुझसे तू क्या लड़ सकता है ? अहीरों का छोकड़ा ! तू क्या खाकर मुझसे लड़ने को बल लायेगा ? अर्जुन ! तू भी दुबला-पतला है। तेरे साथ लड़ने में भी मेरी बदनामी है। हां, भीम ! तू जरूर मोटा-ताजा और तगड़ा है। तेरा-मेरा कुछ जोड़ हो सकता है, तू दो-चार मिनट मेरे सामने ठहर सकता है।

श्रीकृष्ण ने कहा—तू जिससे चाहे लड़ ले।

जरासन्ध ने कहा—मेरे पास इस समय हथियार तो है नहीं। मैं भीम के साथ मल्लयुद्ध कर सकता हूँ।

फिर क्या था, भीम लंगोट बांधकर अखाड़े में उतर आये। दोनों की कुश्ती शुरू हो गई। दोनों गुत्थमगुत्था हो गये। दिन भर युद्ध होता रहा। श्रीकृष्ण दांव-पेंच में बड़े चतुर थे। वे बड़े ध्यान से हर एक पेंच देख रहे थे। एक अच्छा दांव देखकर उन्होंने भीम को तिनका चीरने का इशारा किया। भीम दांव समझ गये। उन्होंने ठीक दांव का मौक़ा पाते ही जरासन्ध की दोनों टांगें पकड़कर तिनके की तरह चीर दीं। दो फांक करके डाल दिया। जरासंध मर गया। सैकड़ों राजा कैद से छूटकर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की जै-जैकार करने लगे।

चक्रधारी कृष्ण

बड़ी धूमधाम की तैयारी से राजसूय यज्ञ हुआ। श्रीकृष्ण की सलाह से सबको अलग-अलग काम बांट दिये गये। खजाना दुर्योधन को सौंपा गया, दुशासन भंडारी बनाया गया। नकुल-सहदेव सवारियों के प्रबन्ध में रहे। अर्जुन-भीम सेवा-सुश्रूषा में। युधिष्ठिर मंडप में सब का स्वागत करते थे।

श्रीकृष्ण ने अनोखा काम पसन्द किया। वे दरवाजे के भीतर हाथ जोड़े खड़े थे। राजा लोग आते थे और जूता उतारकर यज्ञ मंडप में चले जाते थे। श्रीकृष्ण जूता उठाकर संभालकर एक ओर रख देते थे। जब राजा

लोग बाहर जाने लगते थे तो फिर जूता लाकर साफ़ करके उनके सामने रख देते थे।

यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। दुर्योधन जलता तो था ही, उसने .ख़ूब खजाना लुटाया, खजाना तो खाली न हुआ; पर उससे युधिष्ठिर की ख़ूब वाहवाही हुई। दुशासन ने भंडार खाली करने में कमी न की; पर इससे युधिष्ठिर का नाम चारों ओर फैल गया।

यज्ञ समाप्त होने के बाद सबकी पूजा का समय आया। द्रोणाचार्य, भीष्म-पितामह, कृपाचार्य आदि एक-से एक बढ़कर विद्वान, वृद्ध, बुद्धिमान, राजा, रईस हजारों की तादाद में बैठे थे। सभी तरह के योग्य पुरुषों का ऐसा जमघट कभी न हुआ होगा। श्रीकृष्ण सबके पीछे जूतों के पास बैठे थे। बड़ी गंभीरता से विचार हो रहा था कि सब से पहले किसकी पूजा की जाय। तिलक के योग्य सबसे पहले कौन है ? सब इधर-उधर एक दूसरे की ओर देख रहे थे। सन्नाटा छाया था। अन्त में सब ने एक स्वर से कहा—भीष्म-पितामह हममें सबसे बड़े और योग्या-योग्य को समझनेवाले हैं। वे जिसे कहें उसी के पहले तिलक किया जाय।

भीष्म ने एक बार फिर चारों ओर देखा और कहा—हममें सब बातों में सबसे योग्य और प्रथम पूजा

के लायक श्रीकृष्ण हैं। इसलिये सबसे पहले युधिष्ठिर उन्हीं की पूजा करें।

द्रोणाचार्य ने इसकी हामी भरी। एक साथ हजारों आवाजों में सुनाई पड़ा "ठीक है, ठीक है।" श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़े, बहुत विनय की कि मैं इस योग्य नहीं हूँ; पर कौन सुनता था। लोगों ने जबर्दस्ती लाकर उन्हें सभा के बीच में बैठाल दिया। बाजे बजने लगे। पूजा का सामान श्रीकृष्ण के सामने रखा गया। युधिष्ठिर तिलक करने ही को थे कि चंदेरी का राजा शिशुपाल क्रोध से कांपते हुए बोल उठा—क्या यहां सब की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है? किसी को भले-बुरे की पहचान नहीं? एक से एक धर्मात्मा, विद्वान, बुजुर्ग और राजा लोग बैठे हुये हैं। और पूजा हो रही है, एक अहीर के छोकड़े की! काली कमरी वाले कंगले की! गायें चराने वाले ग्वाले की! जूता उठानेवाले चमार की! जिसमें न बल, न बुद्धि, न विद्या, न धन! जो मेरे सामने तिनके के बराबर भी नहीं! मुझे हंसी आती है भीष्म की बुद्धि पर, तरस आता है द्रोणाचार्य पर, तुम सबको क्या हुआ, जो चुपचाप मुंह बांधे बैठो हो?

मेरे देखते-देखते इस ग्वाले की पूजा होगी? ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं इसे मारकर अभी सब झगड़ा मिटाये देता हूँ।

लोग बोले--शिशुपाल क्या पागल हो गया है। श्रीकृष्ण के बड़प्पन को नहीं समझता ! जगत विख्यात-ऋषि, विद्वान सन्दीपन के शिष्य को नहीं समझता। गरीबों के सहायक को नहीं समझता ! गोबर्धनधारी को नहीं समझता ! मुष्टिक-चाणूर के मारनेवाले को नहीं समझता ! बड़े-बड़े राक्षसों के नाशकारी, कंस के ध्वंसकारी को नहीं समझता। जूता उठाने की नम्रता को नहीं समझता। काली कमरी वाले की सादगी को नहीं समझता। पशु पक्षियों तक के प्रेमी को नहीं समझता। भला इस समय कृष्ण से बड़ा विद्वान, बलवान, धनवान, नम्र, सादा कौन है, जिसकी पूजा की जाय ?

इस तरह की गुनगुनाहट सुनकर शिशुपाल श्रीकृष्ण को मारने के लिये झपटा। श्रीकृष्ण ने कहा--बस, खबरदार ! होशियार ! यादकर तेरी माता से मैंने तेरी सौ गालियाँ माफ करने को कहा था। यह भी कह दिया था कि उसके बाद मैं तुझे माफ न करूंगा और सजा दूंगा। अब सौ से अधिक गालियाँ हो चुकीं। इसलिये यह ले, किये का फल भोग।

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र घुमा कर मारा। शिशुपाल का सिर कटकर धरती पर लोटने लगा।

सब अशान्ति मिट गई। श्रीकृष्ण की पूजा की गई। सब ने ही यथायोग्य पूजा पाई।

दूत कृष्ण

विदुर के घर शाक खाना

दुर्योधन पांडवों से जलता ही था। राजसूय-यज्ञ में युधिष्ठिर की कीर्ति से और भी डाह करने लगा। कुछ कहा-सुनी भी होगई। अब उसे रात-दिन यही चिन्ता थी कि पांडवों का नाश हो।

दुर्योधन का मामा शकुनि जुआ खेलने में बहुत चतुर था। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को बुलाकर जुआ खिलवाया और उनका सब राजपाट धन-दौलत जीत लिया। युधिष्ठिर ने सब हारकर अपनी स्त्री द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया और उसे भी हार दिया। दुशासन ने द्रौपदी की साड़ी खींचकर उसे नङ्गी करना चाहा; पर श्रीकृष्ण ने साड़ी इतनी बड़ी कर दी कि दुशासन साड़ी खींचकर थक गया; पर द्रौपदी नङ्गी न हुई।

दुर्योधन ने युधिष्ठिर आदि को बारह वर्ष के लिये वन को भेजवा दिया। बारह वर्ष समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को धृतराष्ट्र दुर्योधन के पास भेजा कि वे मान

जायें और केवल हमें चार-पांच गाँव देकर कुशल से रहने दें। व्यर्थ में डाह करके युद्ध न करें।

श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की सभा में पहुँचे। सभी लोग बैठे थे। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर का संदेशा सबको सुनाया। सबने कहा—बहुत ठीक है। परन्तु दुर्योधन न माना। बोला—मैं बिना युद्ध के सुई की नोक के बराबर भी जमीन न दूंगा। श्रीकृष्ण जब उसे बहुत समझाने लगे तो उसने श्रीकृष्ण को कैद करना चाहा।

श्रीकृष्ण ताड़ गये। वे क्रोध में बोले—तू क्या मुझे केवल दूत समझता है। जानता नहीं, नीचता पर उतारू हो रहा है।

श्रीकृष्ण के क्रोध को देखकर दुर्योधन डर से थर-थर कांपने लगा उसे चक्कर-सा आ गया। लोग उठाकर महलों में ले गये। कृष्ण उसी समय सभा से चल दिये।

उनसे महलों में भोजन की प्रार्थना की गई। किन्तु उन्होंने सुन्दर भोजनों को छोड़कर विदुर के घर भोजन किया। बिदुर दासी के पुत्र थे, गरीब थे; पर सज्जन और श्रीकृष्ण के भक्त थे। श्रीकृष्ण छुआछूत का विचार छोड़कर उनके घर गये। विदुर की स्त्री ने रूखा-सूखा जो कुछ शाक-पात का भोजन बनाया, श्रीकृष्ण ने उसे हंस-हंसकर

खाया। बोले—ऐसा स्वादिष्ट भोजन मुझे दुर्योधन के यहां नहीं मिल सकता था।

युद्ध का न्यौता

लाख कोशिश करने पर भी लड़ाई न रुकी। कौरव पांडव दोनों अपनी-अपनी सेनाएं सजाने लगे। सहायकों को रण-निमंत्रण भेजने लगे।

दुर्योधन श्रीकृष्ण से जलता था। लेकिन वह यह अच्छी तरह समझता था कि श्रीकृष्ण सबको एक सा समझते हैं, उनका कोई दोस्त दुश्मन नहीं है। उनके पास जो सहायता माँगने जाता है वे उसी की मदद करते हैं।

दुर्योधन ने सब को निमंत्रण भेज दिये। श्रीकृष्ण को न्यौतने खुद गया। द्वारिका पहुँच दुर्योधन ने महलों में जाकर देखा—श्रीकृष्ण जी सो रहे थे। वह मिजाजी सिरहाने बैठ गया। दैवयोग से उसी समय अर्जुन भी इसीलिये आ गये, वे पैताने की ओर बैठ गये।

श्रीकृष्ण जगे। आँख खुलते ही उनकी नजर अर्जुन पर पड़ी। अर्जुन ने प्रणाम करके कहा—भगवन्! युद्ध का न्यौता देने आया हूँ। पाण्डव आपके सहारे हैं।

इसी समय खिसियाया हुआ दुर्योधन झुंझलाकर बोला—पहले मैं आया हूँ, मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।

श्रीकृष्ण ने घूमकर देखा, बोले—ओहो ! दुर्योधन, तुम भी आ गये पर मेरी नजर तो पहले अर्जुन पर पड़ी और निमंत्रण भी पहले इन्हीं का मिला।

दुर्योधन—इससे क्या, आया तो पहले मैं हूँ।

श्रीकृष्ण ने कहा—खैर कोई बात नहीं। मैं दोनों की मदद करूंगा। सुनो, एक ओर मेरी बावन लाख सेना लड़ेगी दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा। उसमें भी शर्त्त यह कि मैं लड़ना तो दूर हथियार तक न उठाऊंगा। तुममें से जो जिसे पसन्द करो, मांगलो। हां, अर्जुन छोटा है इसलिये इसे पहले मांगने का हक है।

दुर्योधन मन में सोचने लगा—अर्जुन कहीं सेना न मांग ले, जो मैं रह जाऊं; पर ऐसा नहीं हुआ। अर्जुन ने केवल कृष्ण को माँगा। दुर्योधन खुशी से उछल पड़ा, बोला—ठीक, ठीक, मुझे मन्जूर है। आप पांडवों की ओर जावें। सेना मुझे दे दें। श्रीकृष्ण ने ऐसा ही किया।

योगी या उपदेशक श्रीकृष्ण

दोनों ओर की सेनाएं मैदान में खड़ी थीं। चारों ओर मूड़ ही मूड़ दिखाई देते थे। कभी-कभी एक साथ ही घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़ और मारू बाजों के धौंसे कानों के पर्दे फाड़ने लगते थे। मालूम पड़ता था एक साथ सैकड़ों बादल गरज उठे।

कौरवों के सेनापति भीष्म थे। पांडवों के अर्जुन। अर्जुन ने धनुष चढ़ाकर अपने सारथी श्रीकृष्ण को आज्ञा दी—मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो। मैं ज़रा देख तो लूं मुझसे लड़ने कौन-कौन आये हैं। कृष्ण ने रथ हाँककर सेनाओं के बीच में खड़ा कर दिया। अर्जुन दुश्मनों की सेना को एकबार अच्छी तरह देखकर बोले—

हे कृष्ण! ये तो सब नाते रिश्तेदार हैं। चाचा, बाबा, मामा, गुरु, भाई बन्धु हैं। इनको मारकर मैं क्या करूंगा। मैं इनको मारकर तीनों लोकों का भी राज्य नहीं चाहता। ये भले ही मुझे मार डालें। मैं इन पर हाथियार नहीं उठाऊंगा। हे कृष्ण, मुझे चक्कर आ रहा है। गाण्डीव धनुष हाथ से छूटा पड़ता है। कौरव मेरे भाई हैं। मैं इन्हें मारकर सुखी नहीं हो सकता।

ऐसा कहकर अर्जुन धनुष-बाण फेंककर रथ में बैठ गये। कृष्ण ने देखा—कर्त्तव्य-पालन के समय अर्जुन को यह क्या हो गया, यह तो बहुत बुरा है। यह इस बात को भूल गया कि मैं अधर्म से लड़ता हूँ।

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! यह क्या, तुम्हें क्या होगया? तुम डरपोक मत बनो। तुम तो वीर हो, फिर दिल में कमजोरी क्यों लाते हो। इससे न तो स्वर्ग मिलता है न नाम होता है, बल्कि दोनों ही मिट जाते हैं।

अर्जुन ने कहा—तो तुम्हीं बताओ, इस समय मुझे क्या करना चाहिये। मेरा भला किसमें है ?

श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा—अर्जुन ! तुम शोक भी करते हो और पंडित भी बनते हो। पंडित लोग किसी के मरने जीने का शोक नहीं करते।

शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं होता। हम तुम सब पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी होंगे। जैसे शरीर में बचपन, जवानी, बुढ़ापा आता है या जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े बदल लेता है। ऐसे ही जीव शरीर को बदल लेता है। इसलिये विद्वान इसके जीने मरने का शोक नहीं करते। यह आत्मा न कभी मरता है न पैदा होता है। इसे न हाथियार काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सुखा सकती है।

दोस्त, दुश्मन, भाई, बन्धु, पिता गुरु सब स्वार्थ और सुख के नाते-रिश्ते हैं। तुमको केवल धर्म-अधर्म का विचार करके कर्त्तव्य कर्म करना चाहिये। फल की इच्छा छोड़ देनी चाहिये। अधर्म के नाश में माता, पिता, गुरु, भाई बन्धु कुछ भी नहीं हैं। यदि डर से धर्म-युद्ध छोड़ दोगे तो अधर्मी और पापी कहाओगे। सब तुम्हारी निंदा करेंगे। तुम्हारे लोक परलोक दोनों बिगड़ जायंगे। वीर यदि

युद्ध में मरते हैं तो सीधे स्वर्ग को जाते हैं। इसलिये व्यर्थ के विचारों को छोड़कर कर्त्तव्य का पालन करो।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दो घंटे ऐसा धर्मोपदेश दिया कि अर्जुन का सब मोह दूर हो गया, डर जाता रहा। उन्होंने श्रीकृष्ण को सच्चे उपदेश के लिये गुरु मानकर प्रणाम किया फिर वे धनुष बाण लेकर युद्ध में जुट गये। गीता पुस्तक में श्रीकृष्ण का ही दिया हुआ उपदेश है।

सारथी कृष्ण

लड़ाई में भीष्म सबसे बली थे। वही कौरवों के सेनापति थे। पाण्डव बहुत परेशान थे। भीष्म को मारने का कोई उपाय न सूझता था।

श्रीकृष्ण ने बताया—भीष्म पितामह के पास चलकर उन्हीं से उनके मारने की तरकीब पूछो। पाण्डव उनके पास गये। सबने पूछा—पितामह ! हम आपको तो नहीं जीत सकते ? भीष्म ने अपने मारने की युक्ति बता दी।

उसी युक्ति से भीष्म मारे गये। द्रोणाचार्य सेनापति बनाये गये। उन्हें भी श्रीकृष्णजी ने युक्ति से मरवाया।

एक दिन अर्जुन दूर पर लड़ रहे थे। कौरवों ने छलबल से उस दिन चक्रव्यूह नाम का मोरचा बनाकर अर्जुन के वीर पुत्र अभिमन्यु को फाँस लिया और सात-

सात बड़े योद्धाओं ने एक साथ मिलकर उस सोलह वर्ष के बालक को मार गिराया। उसके मारने में सबसे बड़ा हाथ जयद्रथ का था। अर्जुन ने जब सुना कि इन दुष्टों ने अन्याय पूर्वक आज मेरे लड़के को मार डाला तो उन्होंने कसम खाई—यदि कल मैंने सूरज डूबने के समय तक जयद्रथ को न मार डाला तो खुद आग में जल मरूंगा।

पाण्डव चिन्ता और अचरज में डूब गये। कौरव खुश हुये। श्रीकृष्ण मुसकुराये। जयद्रथ काँप गया।

दूसरे दिन कौरवों ने बड़ा विकट मोरचा लगाया। बहादुर-बहादुर योद्धा आगे रखे, जिससे उनसे लड़ने में ही अर्जुन का दिन बीत जाय। जयद्रथ को सबसे पीछे तेरह कोस की दूरी पर एक बड़े गढ़े में छिपाकर रखा।

आज का युद्ध बेढब था। श्रीकृष्ण के रथ हाँकने की चतुरता से लोग चकित होकर दाँतों तले उंगली दाब रहे थे। छिन में घोड़े लेट जाते थे, छिन में दो पैरों से खड़े हो जाते थे, छिन में घुटनों के बल हो जाते थे। कभी मालूम होता था जायंगे सीधे पर घूमकर दूसरी ओर चल देते थे, दुश्मन ताकते ही रह जाते थे। बड़ी चतुरता से दांव-घातों को बचाते हुये, योद्धाओं से पीछा छुड़ाते हुये श्रीकृष्ण ने शाम होते-होते रथ को जयद्रथ के पास तक पहुँचा दिया, पर वह गढ़े में छिपा था, मारा कैसे जाता।

ऐसा दिखाई दिया, मानो सूरज डूब गया। कौरव खुशी से चिल्लाने लगे—अर्जुन ! सूरज डूब गया, प्रतिज्ञा पूरी करो, जलने के लिये लकड़ी मंगाओ। दुर्योधन ने बड़ी जोर से ठहाका मारकर कहा—कृष्ण ! तुम्हारे किये कुछ भी न हुआ। तुम अर्जुन तक को न बचा सके। जयद्रथ भी गढ़े से निकल कर अर्जुन के सामने आकर कौरवों की हाँ में हाँ मिलाने लगा।

अर्जुन ने धनुष-बाण छोड़ दिये। वे श्रीकृष्ण से बोले—भगवन् ! तुमने आज अपने सारथीपने की हद कर दी, पर क्या किया जाय। ख़ैर, अब मुझे लकड़ी मंगवाओ, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूं। मेरे कसूर माफ़ करना। भाइयों से प्रणाम कहना और कहना—मेरे कसूर माफ़ करें। मैं तो अभिमन्यु का बदला न ले सका, पर वे जरूर लें। उत्तरा और द्रौपदी को मेरी ओर से समझा देना, आंसू न गिरावें। यदि मैंने फिर जन्म लिया तो अन्याइयों के इस अन्याय का बदला लूंगा।

जयद्रथ ! खूब, नाचो, कूदो मौज उड़ाओ। सचमुच आज तुम्हारे हँसने का समय है। अब तुम्हें कोई न मारेगा।

श्रीकृष्ण सब बातें सुनकर मुसकरा रहे थे। अर्जुन सब से बिदाई मांग रहे थे। अर्जुन जब रथ से उतरने लगे तो श्रीकृष्ण ने कहा—

अर्जुन ! तुम क्या बक रहे हो। इधर पच्छिम में देखो, अभी सूरज कहां डूबा ! घाम निकल रहा है। धनुष उठाओ, देर न करो, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

एक दम रंग ही बदल गया। सबने देखा, सचमुच सूरज नहीं डूबा था, घाम फैला था। किसी की समझ में नहीं आया—अभी क्या होगया था। अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया और जयद्रथ से कहा—"ले संभल जा।"

सूर्य की किरणें जयद्रथ के मुख पर पड़ने लगीं। उसकी आंखें चौंधिया गईं। काल सामने नाचने लगा। एकदम चीख निकल पड़ी—"धोखा, धोखा ! दुर्योधन ! बचाओ, बचाओ। ओह ! मरा, कहीं ठिकाना नहीं।"

मरता क्या न करता। म्यान से तलवार निकालकर जयद्रथ अर्जुन पर झपटा, पर सब व्यर्थ था। वह अर्जुन के पास भी न पहुँच पाया। अर्जुन के एक जहरीले बाण ने उसका सिर भुट्टा-सा उड़ा दिया। जीत के नगाड़े बज उठे। पाँच मिनट पहले जो हँस रहे थे—रोने लगे और रोनेवाले हँसने लगे।

श्रीकृष्ण ने रथ अपने डेरों की ओर घुमाया। अर्जुन ने पूछा—आख़िर यह तो बताओ यह क्या बात थी जो सूरज डूब गया और निकल आया।

श्रीकृष्ण ने कहा—यह भी सारथीपन था। मैंने रथ इस तरह खड़ा किया कि उसकी पताका से छांह हो गई, सूरज छिप सा गया। सुदर्शन चक्र घुमा दिया जिससे कोहरा-सा छा गया। फिर रथ घुमाने से सूरज के सामने से पताका हट गई, कोहरा छट गया। सूरज निकल आया।

अर्जुन रथ से कूद पड़े। श्रीकृष्ण के पैरों में गिर गये। बोले—धन्य तुम्हारी माया। तुम्हें छोड़कर मैं तुम्हारी फौज क्या करता।

एक दिन कौरवों के सेनापति कर्ण थे। अर्जुन से सामना था। कर्ण अर्जुन से किसी तरह कम न था।

अर्जुन के एक बाण से कर्ण का रथ १०-१२ कदम पीछे हट जाता था। कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ ३-४ कदम पीछे हट जाता था। जब अर्जुन का रथ पीछे हटता तो श्रीकृष्ण कहते—"शाबास कर्ण! ख़ूब हटाया"।

कई बार कृष्ण के मुख से दुश्मन की प्रशंसा सुन कर अर्जुन बिगड़ उठे, बोले—मैं कर्ण को दस-बारह कदम पीछे हटाता हूँ, पर तुम एक बार भी मेरी प्रशंसा नहीं करते। मेरा रथ तीन-चार कदम ही पीछे हटता है तो दुश्मन की तारीफ़ करते हो, यह बात बहुत खराब है।

कृष्ण ने हँसकर कहा—अर्जुन सचमुच कर्ण ही प्रशंसा के योग्य है, तुम नहीं। जानते नहीं, तुम्हारे रथ के

ऊपर हनूमान का बल है, हाथ में गाण्डीव का बल है। पहियों में शेषनाग का बल है। रथ मैं खुद हाँक रहा हूँ। यानी संसार की तमाम ताकत तुम्हारे साथ है। यदि तमाम ताकतों के सहारे तुमने उसे दस-बारह कदम हटा भी दिया तो तुम्हारी क्या तारीफ। वह तो अकेला तमाम ताकतों को चार कदम पीछे हटा देता है, फिर क्यों न उसकी प्रशंसा की जाय। सच तो कहना ही पड़ेगा।

अन्त

युद्ध खतम हुआ। श्रीकृष्ण के कौशल और सलाह से अधर्म पर धर्म ने विजय पाई। कौरवों पर पांडवों ने विजय पाई। कुछ धर्मात्मा भी मारे गये, पर अधर्मियों, अन्याइयों और अत्याचारियों का तो नाश ही हो गया।

देश में फैली हुई बुराइयां घट गईं। सब जान गये बुरे काम का फल बुरा होता है, इसलिये बुराई से बचना चाहिये। महाभारत के युद्ध से श्रीकृष्ण को शान्ति मिली। युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे। श्रीकृष्ण द्वारिका गये।

श्रीकृष्ण ने देखा—सब जगह से तो बुराइयाँ दूर होगईं और होती जारही हैं, पर हमारी यादव जाति में घमंड हो गया है। इनमें आपस में फूट पैदा हो गई है। ये लोग लड़ते झगड़ते और अधर्म करने लगे हैं, इसलिये इनका

भी सुधार करना चाहिये। ऐसा विचार कर श्रीकृष्ण जी ने ऐसा किया कि यादव लोग आपस में ही कट मरे। सारा अभिमान मिट्टी में मिल गया।

अब श्रीकृष्णजी को पूरी शान्ति मिली। उन्हें संसार से वैराग्य होगया। राजकाज की ओर से उनकी रुचि हट गई। वे वंशी लेकर जंगलों में दिन-दिन भर झाड़ियों में, पेड़ों की डालों पर बैठे ध्यान में मग्न रहने लगे।

एक दिन श्रीकृष्ण जङ्गल में एक पेड़ की जड़ के पास पैर फैलाये बैठे हुये थे। ध्यान में लीन थे। उसी समय कोई बहेलिया उस ओर शिकार ढूंढ़ते हुये निकला। उसने दूर से श्रीकृष्ण का सांवला पैर चमकता हुआ देखकर समझा—कोई काला मृग पेड़ के सहारे खड़ा है। बस, निशाना साधकर एक बाण छोड़ दिया।

बाण श्रीकृष्ण के पैर के तलुवे में लगा, ख़ून बहने लगा। बहेलिया पेड़ के पास आया। श्रीकृष्ण को देखते ही रोने लगा। हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से बोला—मुझ से भारी अपराध हुआ, क्षमा कीजिए।

श्रीकृष्ण ने हंसते हुये कहा—तुम सोच न करो जो कुछ होना था वही हुआ, बहुत अच्छा हुआ।

बाण विषैला था। विष का असर शरीर में होने लगा। श्रीकृष्ण जी को बेहोशी आगई। चेहरा

कमल की तरह खिल गया, कुछ ही क्षणों में प्राण-परवेरू उड़ गये।

अनूठी कहानी

कहो, तुमने श्रीकृष्ण की तमाम कहानियां पढ़ीं। उनकी कैसी विचित्र जिन्दगी है।

तुमने देखा? एक अहीर के बालक ने दुनिया में गजब ढा दिया। जेलखाने में पैदा हुआ। मां-बाप के प्यार से दूर—दूसरे के हाथों में पला। कोई अच्छा संग-साथ नहीं—बेपढ़े गोपों के साथ खेला-खाया, गायें चराई, जंगलों में भटका। पहनने को कपड़ों की जगह गंवारू कमरी ओढ़ने को मिली। खाने को तरह-तरह के मसालेदार चटपटे चाट और व्यञ्जन नहीं—रूखी-सूखी रोटी और दूध, दही मठा मिला। फिर भी शरीर में कितनी ताकत—सुनकर अचरज होता है—बिना साथी संगी, फौज फाटा के, बचपन में ही राक्षसों को मारा। कंस को पछाड़ा। मां-बाप को कैद से छुड़ाया। एक अहीर का बालक बिना पढ़े लिखे अपने बर्ताव, बहादुरी और मीठी वाणी से सबका प्यारा बन गया। उसकी बांसुरी पर पशु, पक्षी तक रीझ गये। राजपाट का लोभ नहीं—कंस को मार, उग्रसेन को गद्दी दी। जरासंध को मार, शूरसेन को गद्दी दी।

अपनी बुद्धिमानी, साहस और व्यवहार से जन्म-भूमि से सैकड़ों कोस दूर निर्जन में राज क़ायम किया।

सब से छोटा बना रहा, दूसरों के जूते उठाये, अछूत के घर खाया—पर हज़ारों आदमियों में, राजा-रईसों, गुणियों-विद्वानों, बुद्धिमानों-बुजुर्गों और वीर-बहादुरों में—सबसे पहले अपनी पूजा करवाई।

बिना हथियार उठाये महाभारत रच दिया। बिना लड़े बड़े-बड़े मिजाजियों को मरवा दिया। सिर्फ साथ रह कर निर्बल को सबल कर दिया। सौ पर पांच की जीत कराई। सात अक्षौहिणी से ग्यारह अक्षौहिणी सेना हरवा दी।

बिना साधनों के, बिना किसी की मदद के, इतने छोटे से इतना बड़ा बन जाना—क्या अजीब बात नहीं? बात की बात में बड़े-बड़े राक्षसों को मार गिराना क्या सरल है। जिसकी मदद करना उसके दुःख हमेशा को मिटा देना क्या आसान है। कृष्ण की सभी कहानियां, सभी जिन्दगी विचित्रताओं से भरी हुई और अनूठी हैं।

बालको! श्रीकृष्ण की ज़िन्दगी से तुम यह बात तो अच्छी तरह समझ गये होगे कि ऊंच-नीच जाति में या अमीर-गरीब घर में पैदा होने से कुछ नहीं होता। हर एक अपने कामों से छोटा और बड़ा हो सकता है।

तीन बातें तो सब को ही उनकी जिन्दगी से चुननी चाहिये। १-किसी से न डरना २-किसी काम को असम्भव न समझना ३-जिस काम को करना, पूरा करना।

अब यह बताओ कि श्रीकृष्ण की जिन्दगी में तुम्हें कौन-कौन सी बातें पसन्द आईं, कौनसी नहीं आईं और तुमने अपने को बड़ा बनने के लिये कौन-सी शिक्षायें चुनीं ?

मुझे तो कुछ बातें बहुत पसन्द आईं। सुनो—

१—बचपन का वर्त्ताव उनका कैसा अच्छा था। किसी से लड़ना झगड़ना नहीं, सबसे इतना मेल-जोल रखना कि कोई साथ न छोड़ना चाहे। कोई चीज मिले तो सब को बांटकर खाना। माखन-चोर कहाना, पर अपने लिये नहीं, सब के लिये। तभी तो वृज की स्त्रियां दूध, दही उठा ले जाने पर भी कृष्ण से खुश ही रहती थीं। फिर वे अपने घर से भी दूध दही आदि उड़ा कर सबको बांट देते थे। उनके बाल्त स्वभाव से कभी कोई नाराज़ तो हुआ ही नहीं। जिसने उन्हें एक बार देखा, उसने अपने ही लड़के की तरह प्यार किया।

२—बुराइयों का सुधार करना श्रीकृष्ण जी खूब जानते थे। तभी कंस को मारा, जरासंध और कौरवों को यहां तक कि अपनी जाति वालों को भी मरवाया। फिर

देखो—रुक्मिनी से ब्याह करके उन्होंने बतला दिया कि ब्याह कन्या की रुचि के अनुसार होना चाहिये।

उन्होंने देखा—स्त्रियां नदियों में नंगी नहाती हैं। तो एक बार उनके कपड़े उठा लिये फिर जब स्त्रियों ने नंगे न नहाने की प्रतिज्ञा की तब कपड़े लौटाये।

बिना किसी विचार के विदुर के घर भोजन किया। छुआछूत ऊंच-नीच को कुछ समझा ही नहीं। अधर्म को हटाने में भाई बन्धु नातेदार की भी परवाह न की।

३—सखा प्रेम उनका अजीब देखने में आया। सुदामा के पैर धोने में जब श्रीकृष्ण रोने लगे तो सबको रुलाई आगई, दोस्ती ऐसी ही होनी चाहिये। क्या तुम्हारे कोई ऐसे दोस्त हैं? यदि न हों तो जरूर दो चार ऐसे मित्र बनालो, पर दो बातों का ध्यान रखना १—तुम अपने को कभी उनसे बड़ा न समझना २—उनको कभी छोटा न समझना। मित्र बनाने में गरीब अमीर का ऊंच नीच का ख्याल हमेशा छोड़ देना।

बड़े होने पर भाग्य से यदि तुम धनी और तुम्हारा मित्र गरीब हो तो वैसा ही बर्ताव करना जैसा कृष्ण ने सुदामा से किया; तभी तुम्हारी वाहवाही होगी, तुम इसी में बड़े हो जाओगे छोटे को बड़ा बनाने से आदमी बड़ा हो जाता है। राजसूय यज्ञ में कृष्ण इसी तरह तो बड़े हो गये थे।

कालीदह में गेंद चली गई तो कृष्ण ने किसी मित्र से उसमें घुसने को नहीं कहा, आप ही घुस गये। मित्रों को बचाने में ऐसा ही भाव चाहिये।

अर्जुन को सखा बनाया तो आप उनके साथी बन-कर रहे पर वही अर्जुन जगह-जगह उनके पैरों पड़ते थे।

४—सब का भला चाहना भी जितना श्रीकृष्ण में देखा उतना किसी में नहीं। जब व्रज मूसलाधार पानी से डूबने लगा तो ब्रजवासियों का दुख उससे न देखा गया, गोबर्धन उठा ही लिया। जरासंध ने बेकसूर सैकड़ों आद-मियों को कैद कर रक्खा था श्रीकृष्ण की चिन्ता तभी मिटी जब उन्हें छुड़ा दिया। दुर्योधन उनसे कितना बैर मानता था, पर वह जानता था कि श्रीकृष्ण सबका भला चाहते हैं तभी तो युद्ध का न्यौता देने गया।

५—लोभ न होना भी श्रीकृष्ण में अद्‌भुत तरह से पाया गया है। जिसको जहां हराया या मारा उसका राज उसी के घरवालों को दे दिया। भलाई करके भी उन्होंने बदले में कभी किसी से एक तिनके की इच्छा न की।

अन्त में हमको मानना पड़ेगा कि श्रीकृष्ण की पवित्र जिन्दगी ने हमको बताया--सबको प्यार करो। किसी से डरो मत। अन्याय और अधर्म के साथ हमेशा बगावत करो।

———